ऐसे हो सामाजिक अध्ययन शिक्षण

✍ महमूद खान

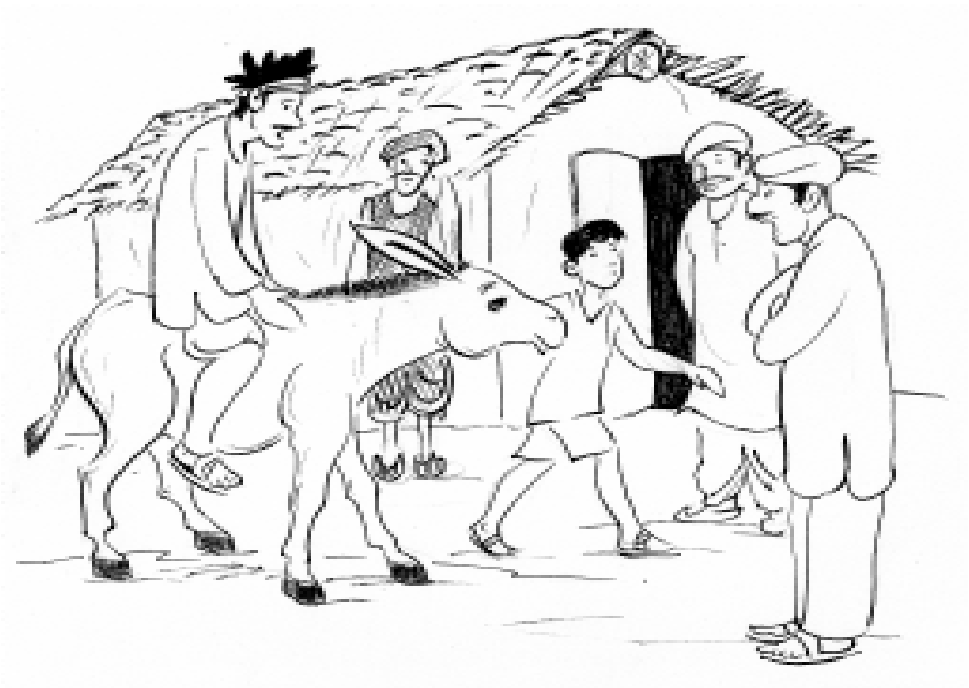

सामाजिक विज्ञान दुनिया भर के स्कूलों में किसी न किसी रूप में पढ़ाया जाता है। भले ही इसे प्राथमिक कक्षाओं में पर्यावरण अध्ययन या माध्यमिक कक्षाओं में सामाजिक विज्ञान या फिर ऊपर की कक्षाओं में इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र या अर्थशास्त्र के नाम से जाना जाए। प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान को एक ही दृष्टिकोण से समझा जाता है, इसलिए दोनों 'पर्यावरण अध्ययन' के अंतर्गत आते हैं। कक्षा एक तथा दो में पर्यावरण अध्ययन के लिए अलग से कोई पाठ्यपुस्तक नहीं होती। भाषा व गणित की पाठ्यपुस्तकों में बच्चों के आसपास के सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण के पर्यवेक्षण कौशल तथा सामान्य समझ के मुद्दों के विकास की समझ पोषित होती है। पर्यावरण अध्ययन शिक्षण की स्वतंत्र रूप से पाठ्यपुस्तक कक्षा तीन से शुरू होती है और कक्षा पांच तक इसे पूर्ण विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। उम्मीद की जाती है कि कक्षा पांचवीं के अंत तक बच्चे पर्यावरण विज्ञान की दक्षताओं यानी अवलोकन, वर्गीकरण, सृजनशीलता, समस्या सुलझाने व विश्लेषण करने की शुरुआती समझ, हस्तकौशल आदि का अभ्यास कर चुके होंगे। वे अपने आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक पर्यावरण के अनुभव को कक्षा–कक्ष में एक दूसरे से बांटेंगे।

कक्षा छह, सात एवं आठ के लिए सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या में इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र व राजनीतिशास्त्र से संबंधित क्षेत्रों को शामिल किया जाता है। इतिहास में समाज के विभिन्न पहलुओं में निरंतरता और बदलावों का समय के साथ उनमें बनते बदलते अंतर्संबंधों का विश्लेषण होता है। भूगोल में मानव व प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रों का विश्लेषण होता है। जबकि अर्थशास्त्र में आर्थिक पक्षों का विश्लेषण करने के लिए सिद्धांत व पद्धतियों को विकसित व

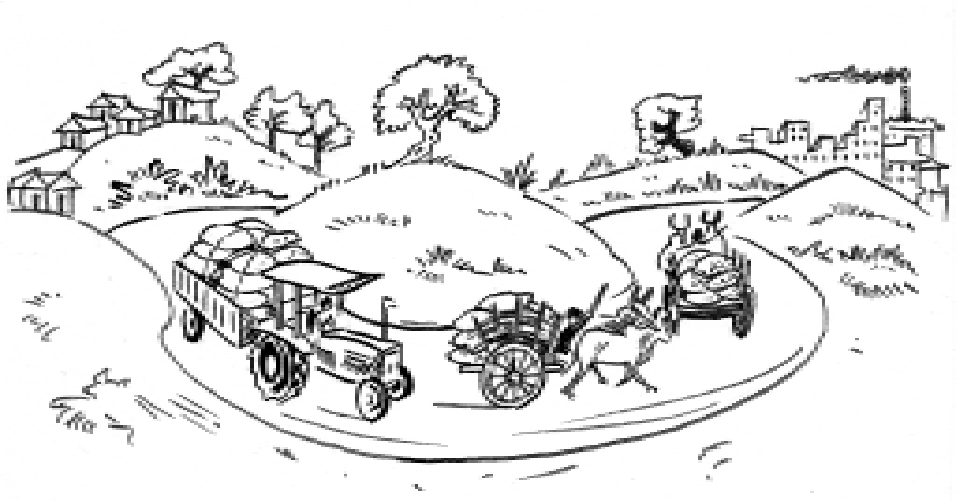

लागू किया जाता है। राजनीतिशास्त्र में राजनीतिक एवं सामाजिक पहलुओं का विश्लेषण किया जाता है। कुल मिलाकर सामाजिक विज्ञान को स्कूली शिक्षा में समेकित विषय के रूप में पढ़ाया जाना अपेक्षित है।

लेकिन प्रारंभिक कक्षाओं में सामाजिक विज्ञान से जुड़े विषयों को गंभीरता से नहीं लिया जाता है। इसका ऊपरी तौर पर कारण समझ में आता है कि ज्यादातर लोग यह मानते हैं कि इन विषयों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो जीवन की वास्तविकताओं से रू–ब–रू होने में मदद करता हो। समाज की इस दृष्टि ने ही सामाजिक विज्ञान को दोयम दर्जे का विषय बनाने में अहम भूमिका अदा की है।

जब भी शिक्षार्थी सामाजिक विज्ञान से जुड़े विषय (राजनीति विज्ञान, समाज शास्त्र, इतिहास व भूगोल आदि) चुनते हैं, तो उन्हें उनसे कमजोर माना जाता है जिन्होंने प्राकृतिक विज्ञानों (भौतिक, रसायन, जीव विज्ञान, गणित व कृषि विज्ञान) को चुना होता है। इसका प्रमुख कारण है कुछ खास तरह के व्यवसायों को हमारे समाज द्वारा दिया गया ऊंचा दर्जा। यहां यह बात भी गौर करने लायक है कि जो शिक्षार्थी प्राकृतिक विज्ञान का चयन करने के बाद भी अपना कैरियर इंजीनियरी या डॉक्टरी में नहीं बना पाए, उन्हें भी संभवतः उसी चश्मे से देखा जाता है। इससे अध्ययन की उक्त दोनों शाखाओं के प्रति समाज का नजरिया बहुत स्पष्ट तरीके से समझ में आता है। इस तरह के नजरिए से ही समाज की यह धारणा पुख्ता होती है कि वे शिक्षार्थी ही सामाजिक विज्ञानों का चुनाव करते हैं जो बाद की ऊंचे दर्जे की पढ़ाई के लिए प्राकृतिक विज्ञानों को पढ़ने में असमर्थ हैं। यानी प्राकृतिक विज्ञानों और गणित जैसे विषयों को केवल होशियार बच्चे ही पढ़ सकते हैं क्योंकि ये विषय जटिल होते हैं।

ऐसा लगता है कि समाज का यह नजरिया बनने के पीछे दो बातें हैं। पहली बात सामाजिक विज्ञानों की विषयवस्तु है, जो कि रसहीन होने के साथ–साथ जीवन में आर्थिक उपार्जन के लिए कोई सुंदर सपना नहीं दिखाती है। दूसरी बात सामाजिक विज्ञानों के इतिहास से जुड़ी नजर आती है। क्योंकि अन्य विषयों की तुलना में सामाजिक विज्ञान के विषयों का उदय हुए बहुत कम समय हुआ है। हालांकि इसकी विषयवस्तु में निरंतर बदलाव होता रहा है, लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से देखते हैं तो साफ दिखाई देता है कि प्राकृतिक विज्ञानों में जितना बदलाव हुआ उतना सामाजिक विज्ञान से जुड़े विषयों में नहीं हुआ। इसलिए प्राकृतिक विज्ञान श्रेष्ठ और सामाजिक विज्ञान कमतर हो गए हैं। इसके लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार समाज चिंतकों का वह वर्ग रहा जिसने इनकी विषयवस्तु तैयार करने का काम किया।

कोई भी विषय सरल या जटिल बनाया जा सकता है। यदि बच्चों के मन में शुरू से ये बातें डालनी शुरू करें कि फलां विषय बहुत जटिल है और फलां विषय बहुत सरल है, तो बच्चे उस विषय के प्रति वैसी धारणाएं अपने मन में बनाना शुरू कर देते हैं। इसी का नतीजा होता है कि ज्यादातर बच्चों को विज्ञान व गणित जटिल विषय तथा सामाजिक विज्ञान विषय सरल नजर आते हैं। दरअसल कोई भी विषय सरल या कठिन नहीं होता, यह सब रुचि व अभ्यास का मसला अधिक है।

सामाजिक विज्ञान विषयों की बहुआयामी प्रकृति शिक्षक के लिए भारी चुनौती पेश करती नजर आती है। दरअसल किसी भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक घटना के पीछे सभी के अपने विचार,सवाल और जवाब होते हैं। इनमें बहुत सारे अलग–अलग पहलू उभरकर

सामने आते हैं। ऐसे में शिक्षक किसके साथ जाए। शिक्षण के दौरान यदि इनका ख्याल न रहे तो शिक्षण ऊबाऊ व अरुचिकर बन जाने की संभावना बढ़ जाती है। विषय के प्रति अरुचि ही शिक्षण में रटंत को बढ़ावा देती है।

एन.सी.एफ. 2005 में भी प्राकृतिक विज्ञानों की तुलना में सामाजिक विज्ञान को कमतर आंकने पर चर्चा की गई है। कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में विषयवस्तु अक्सर ऐसी होती है जो समाज की वास्तविकता को सामने न लाकर नियमों व आदर्शों का ज्ञान देने पर अडिग है जो द्वंद्व पैदा करती है। ऐसे में उन मूल्यों को आत्मसात करना बहुत मुश्किल भरा होता है जो पाठ्यपुस्तकों में दिए जाते हैं। अब सवाल उठता है कि इस समस्या का हल पाठ्यपुस्तक की सामग्री में तलाशा जाए या फिर शिक्षण की शैली में ?

वस्तुतः सामाजिक विज्ञान विषय की पुस्तकों में न सिर्फ विषयवस्तु को जिंदगी के अनुभवों के साथ पिरोया जाना चाहिए, बल्कि उनमें इस बात का भी समावेश होना चाहिए कि शिक्षक उस विषयवस्तु के साथ किस प्रकार के शिक्षणशास्त्र का इस्तेमाल करे जिससे बच्चों को उनके कक्षा–कक्ष अधिक रुचिकर व आनंददायक लगें।

इसमें किसी प्रकार का संदेह नजर नहीं आता कि यदि पाठ्यपुस्तकें अच्छी हों तो बिना शिक्षक के भी बच्चे उनका लाभ उठा सकते हैं। लेकिन इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि यदि शिक्षक उत्साही और थोड़े सृजनशील हों तो वे कमतर सामग्री के साथ भी बेहतर शिक्षण करवा सकते हैं। ऐसे शिक्षक पाठ्यपुस्तकों तक सीमित नहीं रहते हैं और उन्हें रहना भी नहीं चाहिए। लेकिन यहां हमारी चिंता उन बहुसंख्यक स्कूलों की है जहां शिक्षक कम उत्साही हैं। उनका पढ़ाने का तरीका इतना नीरस है कि पाठ्यपुस्तक चाहे जितनी अच्छी क्यों न हो वह भी नीरस हुए बिना नहीं रह सकती। ऐसे शिक्षण से कक्षा के सृजनशील बच्चे भी विषय के प्रति नीरस हो जाते हैं। इस कारण से ही सामाजिक विज्ञानों के प्रति लोगों का नजरिया नकारात्मक बन जाता है। सामाजिक विज्ञान की मौजूदा स्थितियों में सुधार के लिए शायद हमें शिक्षण सामग्री की तुलना में सामाजिक विज्ञान के शिक्षण के तरीके पर अधिक ध्यान देने की जरूरत है।

पिछले कुछ सालों में देश के कुछ समाज वैज्ञानिकों ने गंभीर चिंतन कर अपने नए विचारों से शिक्षण की परंपरागत शैली में बदलाव लाने के लिए प्रयास किए हैं। इन प्रयासों से जो समझ में आता है उसके हिसाब से कुछ मूल–भूत परिवर्तन हमें अपने चिंतन व शिक्षण में लाने होंगे। इसके लिए प्राथमिकता से निम्नलिखित तरीकों पर गौर करने की जरूरत होगी :

विषय की गहन जानकारी

पिछले 14–15 वर्षों के शिक्षक–प्रशिक्षणों से जुड़े होने के कारण यह बहुत पुख्ता तौर पर कहना चाहता हूं कि सामाजिक विषयों से जुड़े शिक्षक साथियों के पास विषयगत जानकारी बहुत सीमित है। इसके लिए पाठ्यपुस्तक को तो गंभीरता से पढ़ना ही होगा, साथ ही कुछ अन्य पठनीय सामग्री का अध्ययन भी करना होगा। मैं इस बात में विश्वास रखता हूं कि यदि मुझे विषय बहुत गहराई से आता है तो मैं कोई न कोई ऐसा तरीका अवश्य निकाल लूंगा जिससे दूसरों को भी उसे समझा सकूं।

अपने विचारों को रोकने का अभ्यास

किसी भी मुद्दे पर यदि हम अपने शिक्षार्थियों को सोचने–समझने व निर्णय लेने के अभ्यस्त होते हुए देखना चाहते हैं तो यह जरूरी हो जाता है कि हम अपने विचारों को उनके सामने इस तरह न रखें कि वे उनके प्रवाह में बह

जाएं। हां यदि शिक्षार्थी प्रश्न उठाकर आपके विचार जानने का प्रयास करें तो अवश्य अपने विचार देने चाहिए। अन्यथा एक शिक्षक स्वयं के विचार व्यक्त करके छात्रों की स्वतंत्र विचार प्रक्रिया को आसानी से प्रभावित कर सकता है। छात्र–छात्राएं अनजाने में शिक्षक के विचारों को आत्मसात कर सकते हैं और ऐसा सिर्फ इसलिए है क्योंकि शिक्षक के साथ उनके सकारात्मक रिश्ते हैं। इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि वे विरोधी विचार अपना लें क्योंकि शिक्षक के साथ उनके नकारात्मक रिश्ते हैं।

शिक्षक हमारे समाज का अभिन्न हिस्सा है, इसलिए समाज में जो बुराई या अच्छाई होती है उससे शिक्षक अछूता नहीं रहता। लेकिन शिक्षक को इस बात का तो ध्यान रखना ही होगा कि कक्षा–कक्ष में सबको समानता से भय रहित होकर अपने विचार रखने के अवसर मिल सकें।

लोकतांत्रिक वातावरण का निर्माण

कई बार कक्षा–कक्ष में ऐसा घटित होता है जो पढ़ाए जा रहे से एकदम विपरीत दिखाई देता है। उदाहरण के लिए हम लोकतंत्र में अपने विचारों की स्वतंत्रता को बहुत महत्त्वपूर्ण बता रहे होते हैं, लेकिन व्यवहार में अपनी कक्षा में हम कभी ऐसा वातावरण नहीं देते कि छात्र–छात्राएं बहुत खुलकर प्रश्न उठा सकें।

सामाजिक विज्ञान विषयों को पढ़ाते वक्त कक्षा–कक्ष में आप शिक्षक की तरह अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं, और फिर भी एक न्यायपूर्ण और सम्मानपूर्ण वातावरण बनाए रख सकते हैं, जब तक आप यह समझते रहें कि आपकी राय सर्वोपरि नहीं है। अगर कोई आपके खिलाफ जाता है तो आप उसकी राय को एकदम खारिज न करें।

लोकतांत्रिक प्रक्रिया अपनाते हुए बच्चों को प्रश्न पूछने व अपना मत देने का अवसर दिया जा सकता है। यह प्रयास भी करना चाहिए कि विषयवस्तु से संबंधित जो विचार समुदाय में चल रहा हो उसे कक्षा की बहस में शामिल किया जाए, ताकि बच्चों का अनुभव उनकी समझ को पुख्ता होने में मददगार साबित हो सके। तभी उन्हें जीवन की व्यावहारिकता में सामाजिक विज्ञान की उपयोगिता समझने का अवसर उपलब्ध होगा। ये अवसर ही छात्रों को रटंत प्रणाली से बाहर लाने में मददगार होंगे।

विकल्पों के बारे में सोचने का अभ्यास

जब किसी समस्या पर निर्णय लेना होता है या सही–गलत का निर्धारण करना होता है तो ज्यादातर लोग उस मत की ओर बढ़ जाते हैं जो सामान्यतौर पर समाज से समर्थन या स्वीकृति प्राप्त होता है। भले ही वह वर्तमान संदर्भों में अपना अर्थ खो चुका हो।

बहुत बार कुछ लोग समस्या को इस प्रकार रखते हैं कि जैसे उसका कोई समाधान हो ही नहीं सकता। जबकि वास्तव में ऐसा शायद कभी न हो। यह अलग बात है कि हमारा विकास इस तरह से हुआ हो कि हमें विकल्पों पर सोचने का अभ्यास ही नहीं हो। ऐसे में हमारी यह जिम्मेदारी बनती है कि हम स्वयं अपने व्यवहार में यह परिवर्तन लाएं। हर समस्या के कम से कम दो–तीन विकल्प खोजें। उनका विश्लेषण कर यह तय करें कि कौन–सा विकल्प सबसे बेहतरीन होगा। इस तरह के अभ्यास अपनी कक्षा के छात्र–छात्राओं को देने की योजना तैयार कर पाएं तो कुछ ही दिनों में वे समस्या के हल के लिए आपसे विकल्पों के साथ चर्चा करने लगेंगे। वे यहां पर आपकी भूमिका केवल मददगार के रूप में देखने लगेंगे।

खोजी प्रवृत्ति का विकास

रटे–रटाए सवालों के रटे–रटाए जवाब देने का प्रचलन बहुत पुराना है। यहां तक देखने को मिल जाता है कि जिस बच्चे ने शिक्षक के विचार को परीक्षा की कॉपी में रटकर ज्यों का त्यों उतार दिया उसको सबसे अधिक नंबर मिलते हैं। रटने की बीमारी का यह एक बड़ा कारण समझ में आता है।

क्या ऐसा हो सकता है जिसमें शिक्षार्थी ही सवाल भी बनाएं और जवाब भी स्वयं खोजने का प्रयास करें, शिक्षक

जवाब खोजने में छात्र–छात्राओं की मदद करने वाला हो। यदि हम इस तरह से सामाजिक विज्ञान पढ़ाने का प्रयास करेंगे तो निश्चित ही कक्षा का वातावरण परस्पर सीखने–सिखाने वाला बन सकता है। इसमें न सिर्फ बच्चों को आनंद आएगा बल्कि स्वयं शिक्षक भी आनंद की अनुभूति करेगा।

भ्रमण जो जानने में मदद करे

छोटी कक्षाओं में पढ़कर अवधारणात्मक समझ बनने में न सिर्फ समय अधिक लगता है बल्कि बहुत बार समझ से परे भी होता है। इसलिए बच्चों को ऐसे अवसर उपलब्ध करवाना बेहतर होता है जब वह स्वयं संस्थाओं/कार्यालयों /स्थानों का भ्रमण करके वहां की जानकारी हासिल कर सकें। हालांकि यह तभी अधिक फायदेमंद होते हैं जब बच्चे अच्छी तरह से प्रश्न उठाने के अभ्यस्त हो चुके होते हैं। क्योंकि यदि वे वहां जाकर प्रश्न नहीं पूछते हैं, तो फिर सीमित जानकारी लेकर वापस आ जाएंगे।

प्रोजेक्ट कार्य

प्रोजेक्ट कार्य को अक्सर स्कूलों में विज्ञान विषय के साथ जोड़कर देखा जाता रहा है। क्योंकि प्रोजेक्ट का मतलब कुछ मॉडल बनवाने से लिया जाता रहा है, जबकि सामाजिक विज्ञान के कई मुद्दे ऐसे हैं जिन्हें हम समूह में प्रोजेक्ट कार्य देकर करवा सकते हैं। इससे न सिर्फ उन्हें वह विषय वस्तु समझने में मदद मिलेगी, बल्कि प्रश्न बनाना, जानकारी इकट्ठा करना, विश्लेषण करना एवं निष्कर्ष निकालना आदि कौशलों का विकास भी होगा। एक साथ काम करने के अनुभव से गुजरेंगे तो उनमें मानवीय मूल्यों का विकास होने की संभावना बढ़ जाएगी। मसलन एक दूसरे की मदद करना/मदद लेना व एक दूसरे के विचारों के प्रति संवेदनशील होकर एक सर्वमान्य विचार बना पाना आदि।

विषयों के अंतर्संबंधों पर चर्चा करना

मानवीय व्यवहार को अलग–अलग विषय प्रभावित करते नजर आते हैं जबकि इन विषयों में आपसी रिश्ता बहुत गहरा होता है। इसलिए कक्षा–कक्ष में इन विषयों के अंतर्संबंधों पर

लगातार बात करते हुए आगे बढ़ें ताकि बच्चे सहज रूप से विषयों के अंतर्संबंधों पर अपनी समझ बना सकें। उदाहरण के लिए भूगोल की किसी घटना से कैसे तत्कालीन समाज की संरचना में बदलाव आ जाते हैं।

अतिरिक्त जानकारियों को शामिल करना

पाठ्यपुस्तक के अलावा अतिरिक्त जानकारियों को शिक्षण में शामिल करना – जैसे अखबार, फिल्म, चित्र और उनमें हुआ चित्रण, या फिर तत्कालीन पत्र, आत्मकथा व संस्मरण आदि विश्वसनीय दस्तावेजों को आधार बनाकर शिक्षण को रुचिकर बनाया जा सकता है। उपर्युक्त तरीके से यदि सामाजिक विज्ञान से जुड़े विषयों को पढ़ाने का अभ्यास हमारी प्रारंभिक कक्षाओं में होने लगे तो आसानी से एन. सी. एफ. 2005 के उन सिद्धांतों पर खरे उतर सकते हैं , जिनमें लिखा गया है कि–

- बच्चों की स्कूली शिक्षा को बाहरी ज्ञान से जोड़ना है।
- बच्चों को रटंत प्रवृत्ति से बाहर लाना है।
- शिक्षण मातृभाषा में करवाने को प्राथमिकता देनी है।
- शिक्षण में स्थानीयता को उभारना है।
- विषयों के बीच की दीवारों को कम करना है।

आप भी करके देखें, निश्चित ही सकारात्मक परिणाम सामने आएंगे।

महमूद खान : राजनीति शास्त्र में स्नातकोत्तर एवं बी.एड.हैं। 'संधान' तथा 'दूसरा दशक' संस्थाओं में लंबे समय तक काम किया है। सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम की पाठ्यपुस्तकें विकसित करने के सिलसिले में शैक्षिक संस्था 'एकलव्य' के साथ जुड़ाव रहा है। आजकल अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन,जयपुर में कार्यरत हैं।